तुलनात्मक भाषा एवं संस्कृति अध्ययनशाला
देवी अहिल्या विश्वविद्यालय इंदौर

शोध पत्र

कबीर का समन्वयवादी दृष्टिकोंण

2024

शोध निर्देशक।
डॉ. विजय लक्ष्मी पोद्दार
एम. के. एच. एस. गुजराती गर्ल्स कॉलेज इन्दौर (एम.पी)
इन्दौर

शोधार्थी
देवीदीन चौधरी
डी. ए. वी. वी.

कबीर का समन्वयवादी दृष्टिकोंण

प्रस्तावना- कबीर के समन्वय की अवधारणा को समझने के लिए कबीर की समकालीन स्थिति को जानना आवश्यक जान पड़ता है। 15वीं शताब्दी में हिंदू तथा मुसलमान में परस्पर धार्मिक द्वंद चल रहा था मुसलमानो ने हिंदुओं पर विजय प्राप्त कर अपने धर्म को थोपना चाहते थे। बलपूर्वक हिंदुओं को मुसलमान धर्म अपनाने को मजबूर कर रहे थे। हिंदू भी अपने धर्म को किसी अन्य धर्म से निम्न नहीं समझते थे उन्हें अपने धर्म पर गर्व था और खुद को सनातनी कहते थे। ऐसी स्थिति में धार्मिक असहिष्णुता बढ़ता जाना स्वाभाविक था। हिंदू संगठित ना होकर वर्णों में बंटे हुए थे जिसका लाभ सुसंगठित मुसलमान को हुआ। हिंदू में वर्ण भावना बढ़ती जा रही थी। भेदभाव की भावना इतनी बढ़ गई, कि समाज में उच्च वर्ण वाले निम्न वर्ण वालों से संबंध रखना अपमान समझने लगे। ऊंच नीच की भावना बड़ी अस्पृष्य जातियां भी बड़ी। हिंदू मुस्लिम समाज में वर्ग विस्तार होता गया संघर्ष की स्थिति को कोई कम नहीं कर रहा था जबकि निरंतर इन वर्गों में ऐसे लोगों का जन्म हो रहा था जो अपनी वर्ग को श्रेष्ठतम समझ कर प्रचार प्रसार करने में लगे हुए थे। नए ग्रंथ रचे जा रहे थे। नए सिद्धांतों का प्रतिपादन किया जा रहा था ग्रंथो पर टिकाएं तक लिखी जा रही थी। इस प्रकार समग्र देश में आज्ञानता की वृद्धि और ज्ञान का क्षय हो रहा था। सत्य की खोज करना एक दूसरा कार्य बन गया था।

हजार वर्ष के इतिहास में कबीर जैसे क्रांति दृष्टा विरले ही पैदा होते हैं। युग-पुरुष युग दृष्टा होते हैं उनकी युग- भेदनी दृष्टि युग के पार जाकर मानव ही नहीं प्राणी मात्र की समस्या की गहरी जांच पड़ताल करती है। कबीर ने देखा कि समाज में तथाकथित लोग जो उच्च जाति में जन्म लेते हैं वह अपने को उच्च समझते हैं जातियों को अवहेलना की दृष्टि से देखते हैं कबीर ने ऊंच-नीच के भेदभाव को बहुत ही बुरा बताया इस प्रकार की भावना रखने वालों पर तंज कसा और खरी खोटी सुनाई।
वह लिखते हैं-

“नहीं को ऊंचा नहीं को नीचा, जाकर पिंड ताहि का सींचा।”
कबीर का धर्म मानवता है। उनकी दृष्टि मानवतावादी है। उनका उदार दृष्टिकोण उस ईश्वर की परिकल्पना करता है जो सार्वकालिक, सर्वज्ञानी, सर्वव्याप्त है।
“चींटी के पग मेंउर बाजे, तो भी साहब सुनता है।” अर्थात चींटी के पद के नूपुर की ध्वनि भी वह सब सुनता है जो ‘पुइप वास तैं पातला’है। शरीर रूपी रबाब को विरह नित्य बजा रहा है इससे निकलने वाली ध्वनि को या तो सांई सुनता है अथवा विरही चित्त।
इस उदार दृष्टि से संपन्न कबीर ने समन्वय के युग धर्म की विराट फलक पर प्रतिष्ठा कायम की; उनके लिए ज्ञान की अपेक्षा प्रेम प्रमुख है-

“पोथी पढ़ पढ़ जगमुआं,पंडित भया न कोय।
ढाई आखर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होय।।”1

“प्रेम न खेतौं नीपजै, प्रेम न हाटि बिकाइ।
राजा परजा जिस रूचै,सिर दे सो ले जाइ।।”2

कबीर ने सारा जीवन काशी में व्यतीत करने के बाद मगहर मृत्यु के लिए चुनकर इस बात को प्रमाणित किया; कि काशी में मरने से मुक्ति नहीं हो सकती, मगहर में मरने से जीवन निरर्थक नहीं जा सकता;आवश्यकता है प्रेम की-

जस काशी जस मगहर ऊसर हृदय राम जो हुई ।3

विभिन्न धर्मावलंबियों एवं साधकों की बाहरी पाखंड छोड़कर उसके मूल रहस्य को समझते हुए परमतत्व में प्रतिष्ठित होने का उपदेश दिया जिसमें धार्मिक कृत्यों तथा कयायोग से भक्ति और ज्ञान की विशेषता प्रतिपादित की जाती है वह लिखते हैं-

काजी सो जो काया विचार तेल दीप मैं बाती जारै।
तेल दीप में बाती रहै, जोतिचीन्हि जे काजी कहैं।।4

काजी वही है जो शरीर में स्थित चैतन्य का चिंतन करता है वह ईश्वर प्रेम के स्नेह (तेल में) ज्ञान की बाती जलाता है,तेल में बाती रहते अर्थात प्राण रहते जो परम ज्योति को पहचान लेता है वही वास्तव में काजी कहलाता है मौलवी कुरान के सुरा को समझकर बॉग देता है और मुल्ला नमाज़ पढ़ने बैठने जाता है पर जो अपने शरीर के भीतर नमाज पढ़ता है अर्थात शरीर में व्याप्त परम ज्योति की आराधना करता है वही मुला गरजता है। जहां एक ओर पूजा की निरर्थकता या व्यर्थता सिद्ध की वहीं दूसरी और नमाज़ को प्रेम के बिना निरर्थक बताया-

“पाहण कर पुतला, करि पूजै करतार।
इही भरोसै जे रहे, ते बूढ़े काली धार।।”5

“पाहण कुँ का पूजिए जे जनम न देई जाब।
आंबा नर आसामुखी, यौं ही खोवै आब।।”6

“काजल केरी कोठरी मसि के कर्म कपाट।
पाहनि कोई पृथमो पंडित पाडी बात।।”7

पंडित चारों वेदों का गुणगान करता है और विश्व के आदि और अंत रूप का ब्रह्मा का पुत्र कहलाता है; पर पंडित आदि और अंत के वास्तविक स्वरूप का चिंतन करके उसका वर्णन तो करो? वास्तव में एक अधिकारी तत्व ही मूल सत्य है। आदि और अंत का कथन केवल माया के अंदर है इतना समझ कर संपूर्ण बभ्रम और संशय को नष्ट करो। ऊंची-नीची सभी स्थितियों को दृढ़तापूर्वक पूर्ण-निष्ठा से ग्रहण कर लेता है; वह सन्यासी उन्मत अर्थात तल्लीनता अवस्था को प्राप्त कर लेता है और परम तत्व में प्रतिष्ठित हो जाता है।

“हिंदू मुये राम कहि, मुसलमान खुदाई।
कहैं कबीर सो जीवता, दुह मैं कदे न जाई।।”8

हिंदुत्व के अंधकार से बद्ध-व्यक्ति ईश्वर को अवतारी राम में तथा मुसलमान संस्कार वाले परम सत्य को खुदा में सीमित तथा पृथक समझकर दोनों परस्पर नष्ट हो रहे हैं। कबीर कहते हैं कि वास्तव में जी वह रहा है; जो इस भेद-बुद्धि में नहीं पड़ता और दोनों में व्याप्त अभेद और अद्वैत तत्व को देखाता है। क्योंकि जीवन की सार्थकता ही भेद-बुद्धि से ऊपर उठना है।

“काबा फिर काशी भया,राम भया रहीम।
मोट चून मैदा भया, बैठि कबीरा जीम।।”9

संप्रदायवादी आग्रहों का परित्याग करने, समन्वय के मध्यम मार्ग को बनाने तथा मधि-तत्व में प्रतिष्ठित होने पर काबा-काशी हो गया है और राम रहीम बन गए हैं। क्योंकि अब भेद का ज्ञान करने वाली उपाधि मुलत्व में समाहित हो गई है। भेद का चूना अब पिस कर अभेद की मैदा बन गया हूं कबीर तू इस मैदे का भोजन कर । डॉ. परशुराम चतुर्वेदी लिखते हैं कि-
कबीर साहब के समन्वयवाद की आधारशिला परम तत्व के केवल नित्य तथा एक रस होने, उस पर आश्रित बहुरूपणी सृष्टि के स्थिर होने और उसके विविध अंगों के उनके मौलिक एकता के कारण एक समान सिद्ध होने पर स्थित है। इसी कारण उन्हें अधिक तर्क वितर्क करने की आवश्यकता नहीं पड़ी। मनुष्य का जीवन संसार के माया जाल में फंस कर तमाम प्रकार की क्रिया करता है मन को भटकाता रहता है और उसे कहीं भी आश्रय नहीं मिलता अंत में नाशवान शरीर नष्ट हो जाता है।

“मरता मरता जग मुवा औसर मुवा ना कोई।
कबीर ऐसी मरि मुवा जो बहुरि न मरना होई।।”10

“मन मथुरा दिल द्वारिका काया काशी जड़ी।
दसवां द्वार देवरा तामे ज्योति पिछड़ी।।”11

“तीरथ तो सब बेलड़ी, सब जग मेल्या धाई।
कबीर मूल निकंदिया, कौण हलाहल खाई।।”12

“माला पहरी मनमुशी, तांथैं कछु न होई।
मन माला कौ फेरता, जग उजियारा ही।।”13

सारांश कबीर ने तीर्थ स्थान एवं मन की वासनाओं को व्यर्थ कहां है। हाथ में माला फेरने से, तीर्थ यात्रा करने से एवं पत्थरों की पूजा करने से मनुष्य का उद्धार नहीं हो सकता। इस प्रकार कबीर ने भ्रांतियां का निर्मूलन कर शक्ति की प्रतिष्ठा की है। संत कबीर दास जी का मानना था अंधविश्वासों और रूढ़ियों से जकडा समाज आडंबर के दलदल में सड़ता गलता जाता है। यदि इनका त्याग कर दिया जाए, तो धर्म एक हो जाएगा छोटे-छोटे समाज परिवर्तित होकर एक बड़े समाज का निर्माण होगा। यद्यपि सभी धर्म अनुयायियों और सामाजिक संगठनों का एक ही लक्ष्य है, मानव मात्र का कल्याण। जिसका इस दुनिया में कोई नहीं होता उसका भगवान होता है लेकिन कबीर का कोई अपना नहीं था फिर भी उन्होंने सबको अपना माना
कबीर के अधिकारी विद्वान डॉक्टर हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने स्वीकार किया है कि इतिहास के हजार वर्षों के युग में ऐसा क्रांति दर्शी कोई अन्य महापुरुष उत्पन्न नहीं हुआ। कबीर मानव की करुणा, महानता और विशिष्टता के कृति हैं; जिन्होंने कुरीतियों को, कुप्रथाओं के खरपतवार को समूल नष्ट कर मानवता की विराट समा योजन की।उनके साहित्य दिग-भ्रमित मानवता को प्रकाश स्तंभ की भारतीय सदैव प्रकाश देता रहेगा।

संदर्भ सूची :-

1.कबीर ग्रंथावली साखी कथनी- करणी को अंग -9,पृ-104

2.कबीर ग्रंथावली साखी, सुरातन को अंग-19, पृ -175

3.कबीर ग्रंथावली साखी, राग मल्हार रमैनी-401 -पृ- 522

4.कबीर ग्रंथावली साखी,एक पदी रमैनी1 -पृ-515

5.कबीर ग्रंथावली साखी, भृम विधौंसन कौ अंग पृ116

6.कबीर ग्रंथावली साखी,-भृम विधौंसन कौ अंग-3,117

7.कबीर ग्रंथावली साखी,भृम विधौंसन कौ अंग-2,पृ -117

8.कबीर ग्रंथावली साखी, मधि कौ अंग-7,पृ-140

9.कबीर ग्रंथावली साखी,मधि कौ अंग-10,पृ-141

10.कबीर ग्रंथावली साखी,-जीवन मरण को अंग-1,पृ-162

11.कबीर ग्रंथावली साखी,भृम विधौंसन कौ अंग-10,पृ-116

12.कबीर ग्रंथावली साखी,भृम विधौंसन कौ अंग-9,पृ-116

13.कबीर ग्रंथावली साखी, मेष कौ अंग - 1,पृ- 119